❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । ❀

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः । नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

❀ अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥ ❀

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो,श्रम व्यर्थ सभी,केवल बंधनकर।।

वर्ष ७ | गौराब्द ४७५, मास—नारायण २३, वार—क्षीरोदशायी शनिवार, २८ पौष, सम्वत् २०१८, १३ जनवरी १९६२ | संख्या ८

श्रीश्रीनवयुवद्वन्द्व-दिदृक्षाष्टकम्

[श्रील-रघुनाथदास- गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीनव-युवराजाय नमः

स्फुरदमल-धूलीपूर्ण-राजीवराजन्नव-मृगमद-गन्ध-द्रोहि-दिव्यांग-गन्धम् ।
मिथ इत उदितैरुन्मादितान्तर्विधूर्ण-द्व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥१॥

कनकगिरि-खलोद्यत्-केतकी-पुष्प-दीव्य-न्नव-जलधर-मालाद्वेषि-दिव्योरु-कान्त्या ।
सबलमिव विनोदैरीक्षयत् स्वं मिथस्त-द्व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥२॥

निरूपम नवगौरी-नव्यकन्दर्प-कोटि-प्रथित-मधुरिमोर्मि-क्षालित-श्रीनखान्तम् ।
नव-नव रुचिरागैर्हृष्टमष्टैर्मिथस्तद्व्रजभूवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥३॥

मदन-रस-विघुर्णन्नेत्र-पद्मान्त-नृत्यैः परिकलित-मुखेन्दु-ह्री-विनम्रं मिथोऽल्पैः ।
अपि च मधुर वाचं श्रोतुमावर्द्धिताशं व्रजभूवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥४॥

स्मर-समर-विलासोद्गारमङ्गेषु रङ्गै-स्तिमित-नवसखीषु प्रेक्षमाणासु भङ्ग्या ।
स्मित-मधुर-दृगन्तैर्हीण-संफुल्ल-वक्त्रं व्रजभूवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥५॥

मदन-समरचर्याचार्यमापूर्ण-पुण्य-प्रसर-नववधूभिः प्रार्थ्य-पादानुचर्याम् ।
समर-रसिकमेकप्राणमन्योन्य-भूषं व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥६॥
तट-मधुर-निकुंजे श्रान्तयोः श्रीसरस्याः प्रचुरजल-विहारैः स्निग्धवृन्दैः सखीनाम् ।
उपहृत-मधु-रङ्गैः पाययत्तन्मिथस्तै-र्व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥७॥
कुसुमसर-रसौघ-ग्रन्थिभिः प्रेमदाम्ना मिथ इह वशवृत्त्या प्रौढ़याद्धा निबद्धम् ।
अखिल-जगति राधामाधवाख्या प्रसिद्धं व्रजभुवि नवयूनोर्द्वन्द्व-रत्नं दिदृक्षे ॥८॥
प्रणय-मधुरमुच्चैर्नव्य-यूनोर्दिदृक्षा-ष्टकमिदमतियत्नादयः पठेत् स्फारदैन्यैः ।
स खलु परम-शोभापुंज-मंजु-प्रकामं युगलमतुलमच्चनोः सेव्यमारात् करोति ॥९॥

अनुवाद—

जिनके अङ्गोंकी उत्तम सुगन्ध खिले हुए और निर्मल मधुसे पूर्ण कमल-पुष्पकी कस्तूरीकी सुगन्धको भी धिक्कार दे रही है तथा व्रजमें परस्पर उदित होने पर जिनका अन्तःकरण आन्दोलित हो रहा है, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न—श्रीराधा-कृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥१॥

स्वर्ण-पर्वतके ऊपर उगे हुए केतकी-पुष्पके साथ सुशोभित नवीन मेघोंकी कान्तिको भी जो अपनी उत्कृष्ट और महती कान्ति द्वारा पराजित करते हैं एवं परस्पर क्रीड़ा द्वारा अपनेको मिलित हुए की भाँति दूसरोंको दिखलाते हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न अर्थात् श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥२॥

अतुलनीय नवगौरी एवं करोड़ों नवीन कन्दर्पकी सुविख्यात माधुर्य-तरंग द्वारा निर्मल हुई परम शोभा भी जिनके नख-प्रान्तमें विनष्ट हो जाती है एवं जो परस्पर अभिनव रुचिविशिष्ट अनुराग द्वारा आनन्दित हो रहे हैं, उन नवयुव द्वन्द्व-रत्न—श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥३॥

मदन-रससे घूर्णित नयनकमलोंके ईषत् कटाक्ष-संचालनयुक्त मुखचन्द्र पर उदित लज्जासे जो परस्पर अत्यन्त विनम्र हुए हैं और परस्परके मधुर बचनोंको सुनकर जिनकी आशाएँ अतिशय वर्द्धित हो रही हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न—श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥४॥

स्निग्ध स्वभाववाली नवीन वयस्यागण—सखियाँ रस-भङ्गियोंके सहित ईषत् हास्ययुक्त नयनांचल द्वारा अङ्ग-प्रत्यङ्गमें कन्दर्प युद्धके विलाससूचक चिह्नोंका अवलोकन करनेपर जो लज्जासे प्रफुल्ल-बदन हो रहे हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न—श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥५॥

जो कन्दर्प-युद्धचर्याके आचार्य हैं, जिनके चरण-कमलोंकी सेवा प्राप्त करनेके लिये पुण्य-पुंजशालिनी नव-वधूगण प्रार्थनाएँ किया करती हैं, जो समर-रसिक हैं, परस्पर एकप्राण हैं तथा एक दूसरेके भूषण-स्वरूप हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न—श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥६॥

श्रीराधाकुण्डमें अत्यधिक जल-विहारके कारण थक कर तटस्थित मधुर-कुंजमें जो सुस्निग्ध सखियों द्वारा रंगके साथ संग्रहित मधुको सखियोंके साथ परस्परको पिलाते हैं, उन नवयुवद्वन्द्व-रत्न—श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥७॥

इस व्रजमण्डलमें मधुर-रसाश्रित ग्रन्थाचार्यगण अतिशय वशवर्ती रूप प्रेमरज्जु द्वारा साक्षात् रूपसे जिनको परस्पर बाँधे थे और जो निखिल जगत्में

'राधा-माधव' के नामसे प्रसिद्ध हैं, उन नवयुव द्वन्द्व-रत्न—श्रीराधाकृष्णका मैं व्रजभूमिमें दर्शन करना चाहता हूँ ॥८॥

जो प्रणयके हेतु इस सुमधुर नवयुवद्वन्द्वरत्न-दिदृक्षाष्टकका यत्नपूर्वक अत्यन्त दीनभावसे पाठ करते हैं, वे निश्चय ही परम शोभापुंजमें अतिशय मनोहर श्रीराधाकृष्णकी अतुलनीय युगलमूर्तिको शीघ्र ही सेवारूपमें नयनयुगलोंके गोचरीभूत करनेमें समर्थ होते हैं ॥९॥

ईश-विमुखताका परिणाम और उसे दूर करने का उपाय

अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण स्वयंरूप-तत्त्व हैं। उनके आश्रित जीव जब तक स्व-स्वरूपमें स्थित रहकर उनकी सेवा करते रहते हैं, तब तक मायाका उन पर किसी प्रकारका प्रभाव नहीं होता। परन्तु वे जीव ज्योंही अपनी स्वतंत्रताका अपव्यवहार करके भगवद् विमुख होते हैं, त्योंही भगवानकी बहिरंगा माया झट उनके स्वरूपको ढक लेती है तथा उसी समयसे उनको इस संसारमें लाकर चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण कराती हुई त्रिविध प्रकारके तापोंसे दग्ध करती रहती है। बहिरंगा-माया जीवोंके स्वरूप को इस प्रकार ढक लेती है कि जीव अपने स्वरूपको तनिक भी अनुभव नहीं कर पाते और माया-प्रदत्त भौतिक स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरोंको ही अपना रूप मानने लगते हैं। अब वे भौतिक शरीरको ही "मैं" मानकर भौतिक सुखोंको ही स्व-सुख समझते हैं और उन्हींके संग्रहको ही जीवनका प्रधान उद्देश्य मानने लगते हैं। इस समय वे विषय सुखमें इस प्रकार मग्न हो पड़ते हैं कि उन्हें अपने स्वरूपकी बात तनिक भी याद नहीं रहती। परतत्त्वके ज्ञानके अभावमें वे प्रेमधर्मको समझनेमें भी असमर्थ हो पड़ते हैं। धर्म-अर्थ-कामके लिये ही उनकी सारी क्रियाएँ होती हैं। इस प्रकार भगवानकी लीला-कथाओं और सेवा आदि के प्रति उदासीन रहना ही उनका धर्म हो पड़ता है।

परन्तु जीवकी यह भगवद् विमुखता आगमापायी है। किसी भी क्षण इसे दूर किया जा सकता है। किन्तु यह कार्य बड़ा कठिन होता है। भगवान या उनके भक्तोंकी कृपासे ही ऐसा संभव है। भगवानकी बहिरंगा मायाकी दो वृत्तियाँ होती हैं—एक विक्षेपात्मिका वृत्ति और दूसरी आवरणात्मका वृत्ति। माया देवी अपनी विक्षेपात्मिका वृत्ति द्वारा जीवको भगवानसे दूर फेंक देती है तथा आवरणात्मिका वृत्ति द्वारा जीव के स्वरूपको ढक देती है। इस प्रकार इन दोनों वृत्तियों द्वारा वह जीवोंको मायिक संसारमें दुःख प्रदान करती हुई इतस्ततः भ्रमण कराती है। इस भ्रमणकालमें बड़े सौभाग्यसे यदि वे किसी प्रकार धर्म-अर्थ-काम-रूप त्रिवर्गकी अनित्यता उपलब्धि कर लेते हैं, तभी मुण्डकोपनिषद्के "द्वा सुपर्णा" आदि मन्त्रोंका तात्पर्य हृदयङ्गम कर भगवत्-सेवाके प्रति उन्मुख होते हैं। ऐसे सेवोन्मुख जीव भगवानसे अभिन्न आश्रय-जातीय श्रीगुरुदेवके चरणोंमें शरणागत होते हैं और उनकी सेवा करते-करते भजन राज्यमें प्रवेश करते हैं। बड़े सौभाग्यवान जीव ही मायाकी उपरोक्त आवरणी और विक्षेपात्मिका वृत्तियोंके कठिन कवल से मुक्त होकर कर्मज्ञानसे निर्मुक्ता शुद्धा भक्तिका आश्रय करते हैं। तदनन्तर भगवद्विस्मृति रूप रोग दूर हो जाने पर जीव प्रतिकूल जगत्को भी भगवत्-सेवोपकरण जानकर संसारकी प्रत्येक वस्तुओंसे भगवानकी सेवा करके आत्म-प्रसन्नता लाभ कर लेता है। अब वह संसारिक भोगोंमें आसक्त न होकर श्रीकृष्ण के रूपगुण-सौरभके प्रति मुग्ध और आकर्षित हो जाता है।

मनुष्य जन्म दुर्लभ ही नहीं सुदुर्लभ है। यह बड़े सौभाग्यसे प्राप्त होता है। समस्त प्रकारके अर्थोंका साधन केवलमात्र इस नर-तनुमें ही संभव है। परन्तु साथ ही साथ यह पानीके बुलबुलेकी भाँति अनित्य और क्षणभंगुर भी है। इसलिये ऐसे सुदुर्लभ-परन्तु क्षणभंगुर और अनित्य मनुष्य जन्मको अपात् रमणीय परिणाम में विषवत् भोगोंको भोगनेमें ही व्यर्थ नष्ट न करके भगवत्प्राप्तिरूप चरम प्रयोजनको लाभ करनेमें लगना ही उसकी यथार्थ सार्थकता है। मनुष्य जन्मकी सार्थकता विषयोंको भोगनेमें-आहार, निद्रा, भय और मैथुनमें नहीं है, क्योंकि विषय भोग तो पशु-पक्षी आदि मनुष्येतर सभी योनियोंमें अवश्यमेव भोगे जाते हैं। अतः बुद्धिमान मनुष्यको श्रीमद्भागवत के "लब्ध्वा सुदुर्ल्लभमिदं" श्लोकका तात्पर्य समझ कर भगवत्प्राप्तिके साधनमें सम्पूर्णरूपसे जुट जाना चाहिए। इस कार्यमें प्रवेश करनेके लिये सर्वप्रथम सद्गुरुका वरण करना चाहिये और उनके आदेश और निर्देशके अनुसार साधन-भजन करना चाहिये। गुरुदेवको कोई मरणशील मानव नहीं समझना चाहिये, बल्कि उनको भगवानसे अभिन्न अथवा भगवत्-प्रकाश मानकर उनकी सेवा करनी चाहिये। उनकी कृपासे ही भगवद्भक्तिमें अधिकार होता है। जो गुरुपादपद्मरूप श्रौत-पथका परित्याग कर देते हैं अथवा गुरुपादपद्मरूप श्रौत-पथका अवलम्बन नहीं करते, वे विमुख जीव ऐसा मानते हैं कि जगतमें अनेक पथ हैं। सभी पथ एकसे हैं। और उन भिन्न-भिन्न पथोंसे एक ही अभीष्टकी सिद्धि हो सकती है।' परन्तु ऐसी मान्यता प्रयोजन तत्त्वके विषयमें भयंकर भूल और मूर्खता है। यह भगवद् विमुखताका ही फल है। कुछ स्वार्थीलोग भगवान विष्णुको ही एकमात्र स्वार्थकी गति न मानकर पंचोपासनामें प्रवृत्त होते हैं। परन्तु इससे जड़ीय भोगोंके अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं लगता। ऐसे-ऐसे कर्मियोंके लिये भगवत्-प्रेम अतीव दुर्लभ है।

श्रीगुरुदेव अद्वयज्ञान व्रजेन्द्रनन्दनके सबसे प्रिय हैं। वे अपने शरणागत जीवोंको शुद्धभक्तिका उपदेश देकर मायाकी उपरोक्त दोनों वृत्तियोंसे मुक्त करा देते हैं। परन्तु उनके श्रीचरणोंमें अपराध होने पर भगवद् विमुखता और भी अधिक रूपमें जीव-को जकड़ लेती है। ऐसी अवस्थामें जीव शुष्क-तर्क-प्रिय हो उठता है, शास्त्र और गुरु-वैष्णवोंकी अवज्ञा करने लगता है। धीरे-धीरे श्रेय-पथको छोड़ कर सदाके लिये या तो आपात् मधुर भोगोंके जालमें गिर पड़ता है अथवा त्यागकी मरीचिकामें भटकता हुआ अपना अस्तित्व भी खो देता है। इसलिये धीर स्वभाववाले पुरुष श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें रह कर—उनकी सेवामें सर्वप्रकारसे नियुक्त होकर उनके निर्देशानुसार भजन मार्गपर अग्रसर होते हैं।

श्रीगुरुदेव न तो भोगकी शिक्षा देते हैं, न त्याग की। ये दोनों वृत्तियाँ भगवत् विमुखतासे ही उत्पन्न होती हैं। श्रीगुरुदेव इनसे पृथक भगवानकी शुद्धा-भक्तिका ही उपदेश देते हैं। यह शुद्धाभक्ति ही जीवको भगवानके समीप ले जा सकती है। वैकुण्ठ पति नारायणका ऐश्वर्य पारमैश्वर्य है। परन्तु यह पारमैश्वर्य भी उनके माधुर्यके सौन्दर्यके सामने अतीव लघु और शिथिल हो जाता है। यही नहीं, श्रीसीता-रामकी स्वकीय उपासना अथवा श्रीरुक्मिणी और द्वारकाधीशकी स्वकीयता भी श्री श्रीराधाकृष्ण-की माधुर्यमयी उपासनाके सामने लघु हो पड़ती हैं। परतत्त्वकी दृष्टिसे—ये तीन ही परतत्त्व, परतर-तत्त्व और परम-तत्त्व हैं। बिना सद्गुरुके इन विचारोंमें प्रवेश करना कठिन ही नहीं, असंभव है।

मनुष्य जबतक अपने इन्द्रिय ज्ञान पर भरोसा रखकर चलता है, तबतक वह हिताहितशून्य और भविष्य दर्शनरहित होकर अपने चरम कल्याणके सम्बन्धमें कुछ विचार नहीं कर पाता। परन्तु सौभा-ग्यवश सत्सङ्ग मिलने पर—कर्मकाण्डकी नश्वरता और अकर्मण्यता समझ लेने पर अपनी भूल अनुभव करता है। ऐसी दशामें वह श्रीगुरुपादपद्म आश्रयकी

आवश्यकता भी भलीभाँति उपलब्धि करता है। श्रीगुरुदेव जीवकी उन्मुखता और भगवन्निष्ठा देखकर उसे 'शब्द ब्रह्म'—वैकुण्ठ-नाम प्रदान करते हैं। साधक जीव गुरुके आनुगत्यमें वैकुण्ठ-नाम और वैकुण्ठ नामीको अभिन्न जानकर श्रद्धापूर्वक वैकुण्ठ नामकी सेवा करने लगता है। इस प्रकार कुछ ही दिनोंमें वह दिव्यज्ञानसे सम्पन्न होकर आत्म-प्रसाद लाभ करता है। यह श्रौत-पथ कभी बन्द नहीं होता। वह कीर्तन-मुखसे निरन्तर प्रवाहित रह कर तर्क पथकी जड़ताको दूर फेंकता है और आगे बढ़ता रहता है।

जबतक कर्म और ज्ञानके प्रति श्रद्धा रहती है, तबतक उत्तम श्रेयकी जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हो सकती है तथा उत्तम श्रेयकी जिज्ञासाके बिना जीवका यथार्थ कल्याण नहीं। उत्तम श्रेयका जिज्ञासु ही सद्गुरुके चरणोंमें एकान्तरूपसे शरणागत होकर चरम कल्याण-स्वरूप कृष्ण-प्रेमको प्राप्त कर सकता है अन्यथा भगवद् विमुखता जीवको निगल लेती है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीसरस्वती गोस्वामी

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी

आविर्भाव और गृह-त्याग

कृष्ण-प्रेमकी बड़ी विचित्र गति है। इसका रङ्ग इतना गहरा होता है कि जिस पर यह चढ़ जाता है, उसको सुन्दर-से-सुन्दर रूप, माता-पिता का स्नेह, स्त्रीका प्यार, बन्धु-बान्धवों, पुत्र-परिवार एवं अतुल सम्पत्तिका मोह—ये सब मिलकर भी बाँधनेमें असमर्थ होते हैं। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी एक ऐसे ही परम उच्च कोटिके प्रेमी संत हो गये हैं। लगभग १४१६ शकाब्दमें बङ्गालके एक प्रसिद्ध नगर सप्तग्राममें कायस्थकुलमें इनका अविर्भाव हुआ था। इनके पिता श्रीगोवर्द्धन मजुमदार बड़े ही धनवान पुरुष थे। श्रीरघुनाथ दासजी बचपनसे ही बड़े बुद्धि-मान और होनहार थे। साथ ही उसी समय से ही भगवद्भक्तिके लक्षणसमूह इनमें प्रकाशित होने लगे थे। उसी समय सौभाग्यसे उस समयके उच्चकोटिके प्रेमी-संतोंका संग भी प्राप्त हुआ। युवावस्थामें पहुँचते-पहुँचते कृष्ण-प्रेमका ऐसा रङ्ग चढ़ा कि पिता-की विपुल सम्पत्ति, सर्वगुण-सम्पन्ना परमरूपवती पूर्णयुवती स्त्री और घर-बार सब कुछ छोड़कर प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके पास चले। जङ्गल-का भयानक रास्ता, बिना खाये-पिये, लगभग ३०० मील तीन दिन-रातमें ही पैदल चलकर पुरी उपस्थित हुए। चिर-दिनोंकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। श्रीमन्महाप्रभुकी प्रचुर कृपा पाकर वे धन्य हो गये।

दास गोस्वामीका वैराग्य

श्रीरघुनाथ दासका वैराग्य बड़ा ही कठोर था। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने रघुनाथदासके वैराग्यकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि 'रघुनाथ जैसा वैराग्य किसी जीवमें संभव नहीं है।' रघुनाथदास अयाचक थे अर्थात् किसीसे कुछ माँगते नहीं थे। बिना माँगे जो कुछ भी मिल जाता, उसीसे जीवन-निर्वाह करते हुए निरन्तर भगवानका भजन करते थे। श्रीजगन्नाथ पुरीमें पहुँच कर वे कुछ दिनों तक श्रीजगन्नाथ देवके सिंहद्वार पर खड़े रहते थे, लोग उनकी अञ्जलीमें महाप्रसाद भिक्षाके रूपमें देते थे। जब उनकी अञ्जली पूर्ण हो जाती, तब वे अपनी कुटीमें लौट आते

और भोजन करते। परन्तु ऐसा करने पर भी उनको संतोष न हुआ। उन्होंने सोचा, कि उनका सिंहद्वारपर अञ्जलिबद्ध होकर प्रसादकी प्रतीक्षामें खड़ा रहना उस व्यभिचारिणी वेश्याके समान है, जो जीविका निर्वाहके लिये द्वार पर खड़ी होकर बड़ी व्यग्रतासे पर-पुरुषोंकी प्रतीक्षा करती है। अतः मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए।' ऐसा सोचकर दूसरे दिनसे श्रीमंदिरके एक भागमें फेंके हुए बासी और सड़े-गले प्रसादको उठा लाते और उसे पानीमें धोकर भोजन करते। अब प्रतिदिन उनका ऐसा ही नियम चलने लगा।

एक दिन करुणावरुणालय श्रीचैतन्य महाप्रभुजी अकस्मात् श्रीरघुनाथ दासकी कुटीमें पधारे। उस समय रघुनाथ दास फेंके गये प्रसादको पानीमें धोकर बड़े प्रेमसे खा रहे थे। यह देखकर श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने पूछा—'रघुनाथ! तुम क्या खा रहे हो?' रघुनाथ दासने अकस्मात् महाप्रभुको देख कर स्पष्ट शब्दोंमें कुछ उत्तर न देकर केवल इतना ही उत्तर दिया—'जी।' सर्वान्तर्यामी महाप्रभुजी उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही हँसते-हँसते उनके पत्तेसे एक मुट्ठी प्रसाद लेकर खाते हुए बोले—'रघुनाथ! तुम मुझे छोड़ कर प्रतिदिन अकेले ही ऐसा अमृत खाते हो।' महाप्रभुजीके इस व्यवहारसे रघुनाथदास बड़े लज्जित हुए। इसी प्रकार भगवान श्रीचैतन्यदेव रघुनाथ दासको कितना प्यार करते थे—यह विज्ञ-वैष्णवोंसे छिपा हुआ नहीं है। श्रीस्वरूप गोस्वामीके आनुगत्यमें रघुनाथदास श्रीगौर सुन्दरकी अन्तरङ्ग सेवा करने लगे।

श्रीराधाकुण्डमें

श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीस्वरूप दामोदर प्रभुकी अप्रकट लीलाके पश्चात् रघुनाथ दासकी स्वतः सिद्ध विरहाग्नि और भी बढ़ गयी। वे श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञानुसार पुरुषोत्तम क्षेत्रसे श्रीवृन्दावन पधारे। यहाँ वे व्रजके प्रसिद्ध प्रेमी संत श्रीरूप-सनातन आदि गोस्वामियोंसे मिले तथा उनकी आज्ञानुसार श्रीश्रीराधाकुण्डके तट पर रह कर भजन करने लगे। अकस्मात् एक दिन उनके हृदयमें एक ऐसी अभिलाषा उत्पन्न हुई कि यदि श्रीश्यामकुण्ड और श्रीराधाकुण्डको पुनः खुदवा कर उनके चारों ओर पक्के घाट बनवा दिये जाँय तो बहुत ही अच्छी बात होगी। भक्तोंकी कोई भी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहती। रह भी कैसे सकती है, जब कि साक्षात् कृष्ण ही उनके प्रेमके अधीन हैं। इधर बदरिकाश्रमसे श्रीबद्रीनारायणजीने एक संतको कुछ स्वर्ण मुद्राएँ देकर कहा—'तुम व्रजमण्डल स्थित श्रीराधाकुण्ड जाओ। वहाँ पर एक बड़े ही प्रेमी संत हैं। उनका नाम श्रीरघुनाथदास गोस्वामी है। तुम उनको ये स्वर्ण मुद्राएँ दे देना। यदि वे इन्हें ग्रहण करनेसे अस्वीकार करें, तो तुम उनसे कहना कि श्रीबद्रीनारायणजीने इन स्वर्ण मुद्राओंको भेजा है। आप इस धनसे श्यामकुण्ड और राधाकुण्डका अपनी इच्छानुसार संस्कार करवा लें।'

श्रीबद्रीनारायणकी आज्ञानुसार वे सन्त व्रजमण्डलमें उपस्थित हुए और श्रीराधाकुण्डमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामीसे मिले। परन्तु जब वे श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीको स्वर्ण मुद्राएँ देने लगे तब उन्होंने अस्वीकार कर दिया। अन्तमें उन संतने रघुनाथदासजीको श्रीबद्रीनारायणका आदेश सुनाया। श्रीबद्रीनारायणकी आज्ञा सुन कर रघुनाथ दासकी बड़ी विचित्र दशा हो गयी। वे 'हा प्रभो! हा नाथ! हा शरणागत-वांछापूरणकारी!' कहते-कहते जोरोंसे रोने लगे। थोड़ी देरके पश्चात कुछ स्थिर होने पर उन्होंने व्रजवासियोंको बुलाया। उनके आने पर दोनों कुण्डोंको खुदवानेके सम्बन्धमें वे उनसे परामर्श करने लगे।

महाराज युधिष्ठिरकी श्रीरघुनाथदासके पास स्वप्नमें प्रार्थना

परामर्शके समय ग्रामवासियोंने यह कहा कि श्रीराधाकुण्ड तो चौकोण है ही, इनको इसी प्रकार खुदाई कर पक्के घाट बनवा दिये जाँय। परन्तु

श्यामकुण्डके तीर पर एक प्राचीन वृक्ष है। इस वृक्ष-को काट कर श्यामकुण्डको भी चतुष्कोण बनवा कर तब पक्के घाट बनवाये जाँय। नहीं तो श्यामकुण्ड टेढ़े रह जायेंगे। स्थिर हुआ, कल उस प्राचीन वृक्षको काटा जायगा। साथ ही कुण्डोंकी खुदायी भी आरम्भ हो जायगी। इधर रातमें महाराज युधिष्ठिर स्वप्नके बहाने रघुनाथ दास गोस्वामीसे बोले--'आप हमें कटवायें नहीं। हम पाँचों भाई वृक्षके रूपमें श्यामकुण्डके तट पर वास कर भजन कर रहे हैं।' रघुनाथ दासने दूसरे दिन प्रातःकाल सबको बुलाकर उस पेड़को काटनेके लिये मना कर दिया। इसीलिये श्यामकुण्ड बक्र रह गये। रघुनाथदास कुण्डोंको सुनिर्मल जलसे पूर्ण देख कर बड़े आनन्दित हुए।

राधाकुण्डवासी श्रीरघुनाथदास

अब वे दिन-रात युगलकुण्डके तीर पर वृक्षोंके नीचे ही रह कर भजन करने लगे। एक दिन श्री-सनातन गोस्वामी प्रभु वृन्दावनसे राधाकुण्ड उपस्थित हुए और मानस पावन घाट पर स्नान करने गये। वहाँ उन्होंने एक बाघको उसी घाट पर पानी पीते हुए देखा। पास ही रघुनाथ दासजी बाह्य-स्मृतिशून्य कृष्ण-स्मरणमें विभोर बैठे हुए थे। बाघ पानी पीकर उनके पास होकर ही जंगलकी ओर चला गया। थोड़ी देरके बाद जब रघुनाथ दासकी बाह्य दशा आ गयी, तब उन्होंने पास ही श्रीसनातन गोस्वामीको खड़ा देखा। रघुनाथ दासने श्रद्धापूर्वक श्रीसनातन गोस्वामीको दण्डवत-प्रणाम किया। श्रीसनातन गोस्वामी भी रघुनाथदासको स्नेहालिंगनमें बाँध कर धीरे-धीरे बोले--'रघुनाथ! मेरा एक अनुरोध स्वी-कार करना पड़ेगा। वह यह कि तुम आजसे कभी भी वृक्षके नीचे जहाँ तहाँ न रह कुटीमें भजन करना।' रघुनाथ दासजी सनातन गोस्वामीकी आज्ञानुसार उस दिनसे एक कुटीमें रह कर भजन करने लगे।

श्रीरघुनाथका वैराग्य बड़ा ही तीव्र एवं उच्च कोटिका था। वे दिन रात २४ घन्टोंमें से केवल डेढ़ घन्टेमें ही शयन और भोजनका कार्य समाप्त कर बाकी २२॥ घन्टे भजनमें विभोर रहा करते थे। दिन रातमें केवल एक बार एक दोना मट्ठा पीते थे, वह दोना भी एक छोटे से पत्तेका बना होता था। माथुर-विरह भावमें विभावित रहनेके कारण उनकी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा प्रवाहित होती रहती थी। इस प्रकार अश्रुतपूर्व तीव्र वैराग्य-का अवलम्बन कर निरन्तर व्रज-रस चिन्तनमें निमग्न रहते थे।

रचित ग्रन्थ

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी परम वैराग्यवान एवं रसिक भक्तके अतिरिक्त प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। उनके द्वारा रचित--(१) स्तवमाला या स्तवावली, (२) दान चरित और (३) मुक्ताचरित माधुर--ये तीन ग्रन्थ वैष्णवोंके कण्ठहार हैं। श्रीगौड़ीय वैष्णव-समाजमें इन ग्रन्थोंका बड़ा सम्मान है।

इन विख्यात महात्माके परम अद्भुत जीवन-चरित्रसे सभी परिचित है। अतः मैंने यहीं पर लेखनीको विश्राम दिया।

—जगद्गुरु श्रीठाकुर भक्तिविनोद

उपनिषद्-वाणी

(छान्दोग्य-४)

गायत्री ही ये सब भूत—प्राणिवर्ग हैं। स्थावर-जंगम जो कुछ भी हैं, वे गायत्री ही हैं। गायत्री ही वाक् हैं और वाक् ही सब प्राणी हैं, क्योंकि वाणी उच्चारण द्वारा गायत्रीका कीर्तन होने पर समस्त प्राणियोंकी भयसे वह रक्षा करती है। गायत्री ही पृथवी है। क्योंकि इसीमें सब प्राणी स्थित हैं। पुरुष के शरीरमें ही पृथवी स्थित है। पुरुषके शरीरमें जो हृदय है, उसीमें प्राण स्थित है। गायत्री ही ब्रह्म है। उसके चार चरण हैं। ये समस्त प्राणी उसका एक पाद हैं और त्रिपाद अमृत प्रकाशमय आत्मामें स्थित है। इस पुरुषके भीतर और बाहर जो आकाश दिखलायी पड़ता है, वह भी पुरुषके भीतर ही स्थित है। यह हृदयाकाश पूर्ण और कहीं भी प्रवृत्त न होनेवाला है। जो इस तत्त्वको जान लेंगे, वे पूर्ण हो सकेंगे। उनकी अन्यत्र कहीं भी प्रवृत्ति नहीं रह सकती है।

यह प्रसिद्ध है कि हृदयमें पाँच देवसुषि (छिद्र) हैं। इसमेंसे पूर्व दिशावाला सूषि ही प्राण है। वही प्राण है, वही तेज है और वही अन्न है। इसी प्रकार इसकी उपासना करनी चाहिए। जो इस प्रकार जानते हैं, वे तेजस्वी और अन्नका भोक्ता होते हैं। इसका दक्षिण छिद्र व्यान है। वही श्रोत्र है, वही चद्रमा है, वही यश है और वही श्री है। जो इस प्रकार जानते हैं, वे श्रीमान और यशस्वी होते हैं। इसका पश्चिम छिद्र आपान है। वही वाक् है, वही अग्नि है, वही ब्रह्मतेज है और वही अन्न है। जो ऐसा जानते हैं, वे ब्रह्मतेजस्वी और अन्न भोक्ता हैं, इसका उत्तरी छिद्र समान है। वही मन है, वही मेधा है, वही कीर्त्ति है और वही व्युष्टि (शरीरका लावण्य है) जो ऐसा जानते हैं, वे कीर्त्तिमान और कान्तिमान होते हैं। इसका ऊपरी छिद्र उदान है। वही वायु है, वही आकाश है, वही ओज है और वही तेज है। ऐसा जानलेने पर ओजस्वी और तेजस्वी हुआ जा सकता है। ये पाँच ब्रह्मपुरुष स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं। इन द्वारपालोंको जानलेने पर स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।

द्युलोकके ऊपर जो परम ज्योति विश्वके पृष्ठपर प्रकाशित हो रही है, वह इस पुरुषके भीतर भी स्थित है। इस हृदय स्थित पुरुषका यही दर्शनोपाय है जब कि मनुष्य इस शरीरमें स्पर्श द्वारा उष्णताको जानता है; तथा यही उसका श्रवणोपाय है जब कि यह कानों को मूँदकर निनद (रथके घोष), नदथु (बैलके डकारने) और ज्वलंत अग्निके शब्दके समान श्रवण करता है। यह ज्योति देखी और सुनी जाती है—ऐसा जानकर उसकी उपासना करनेसे दर्शनीय और विख्यात हुआ जा सकता है।

यह विश्व ही ब्रह्म है, क्योंकि यह ब्रह्मसे उत्पन्न होनेवाला, उसीमें लीन होनेवाला और उसीमें चेष्टा करनेवाला है। शान्त होकर इस प्रकार उपासना करनी चाहिए। यह ब्रह्म मनोमय, प्राणमय, प्रकाश-स्वरूप, सत्य सङ्कल्प, आकाश-शरीर, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, इस सम्पूर्ण जगत्को सब ओरसे व्याप्त करनेवाला, वाक् रहित और संभ्रम शून्य है। हमारे हृदय कमलमें स्थित यह आत्मा धानसे, जौसे, सरसोंसे अथवा श्यामाकतण्डुलसे भी छोटा है तथा यह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक अथवा इन सब लोकों से बड़ा है। वह सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस और इन सबको सब ओरसे व्याप्त करनेवाला है। यह मेरी आत्मा हृदय कमलमें स्थित है। यही

ब्रह्म है। शरीरकी मृत्यु होने पर मैं इसीको प्राप्त होऊँगा। जिसको इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो सकता है।

अन्तरिक्ष जिसका उदर है, वह कोश पृथ्वीरूप मूलवाला है। वह जीर्ण नहीं होता। दिशाएँ इसके कोण हैं और आकाश ऊपरका छिद्र है। उसीमें सारा विश्व स्थित है। इस कोशकी पूर्व दिशाका नाम पुहू है। दक्षिण दिशाका नाम सहमाना है, पश्चिम दिशा का नाम राज्ञी है और उत्तर दिशाका नाम सुभुता है। वायु इन दिशाओंका वत्स है। जो ऐसा जान लेते हैं, वे पुत्रके लिये रोते नहीं है।

पुरुष ही यज्ञ है; क्योंकि उसीमें यज्ञ प्रवर्तित होता है। उसकी आयुके २४ वर्ष प्रातःसवन हैं। चौबीस अक्षरोंवाले गायत्री छन्दमें यह प्रातःसवन संबद्ध है। वसुगण इस प्रातःसवनके अनुगत हैं। प्राण ही वसु हैं। क्योंकि ये ही सबको बसाये हुए हैं। यदि इस प्रातः सवनसम्पन्न आयुमें उसे कष्ट पहुँचावे तो उसे इस प्रकार कहना चाहिए—'हे प्राण रूप वसुगण! मेरे इस प्रातःसवनको माध्यन्दिनसवन के साथ युक्त कर दो; यज्ञस्वरूप मैं आप प्राणरूप वसुओंके मध्य भागमें नष्ट न होऊँ।' तब उस कष्टसे मुक्त होकर वह नीरोग हो जाता है।

इसके पश्चात् जो चौवालीस वर्ष हैं, वे माध्यन्दिनसवन हैं। त्रिष्टुप् छन्द चौवालीस अक्षरोंवाला है और माध्यन्दिनसवन त्रिष्टुप् छन्दसे सम्बद्ध है। रुद्रगण इसी सवनके अनुगत हैं। इसके पश्चात् जो अड़तालीस वर्ष हैं, वे तृतीय सवन हैं। जगती-छन्द से सम्बन्ध रखता है। इस सवनके आदित्यगण अनुगत हैं। प्राण ही आदित्य हैं। क्योंकि ये ही इस सम्पूर्ण विषयज्ञानको ग्रहण करते हैं। उस उपासकको यदि कोई रोग आदि सन्तप्त करे तो उसे इस प्रकार कहना चाहिए, 'हे प्राणरूप आदित्यगण। मेरे इस तृतीय सवनको आयुके साथ एकीभूत कर दो। यज्ञ स्वरूप मैं प्राणरूप आदित्योंके मध्यमें विनष्ट न होऊँ।' ऐसा कहनेसे वह उस कष्टसे मुक्त होकर निरोग हो जाता है। इस प्रसिद्ध विद्याको जाननेवाले ऐतरेय महिदासने कहा था—'अरे रोग! तू मुझे क्यों कष्ट दे रहा है? इससे मेरी मृत्यु नहीं हो सकती।' वे एक सौ सोलह वर्ष तक जीवित थे। इस सवन विद्याको जो जान लेता है, वह भी ऐसा ही दीर्घायु हो जाता है।

जो व्यक्ति भोजन और पीनेकी इच्छा करता है, परन्तु रममाण नहीं होता, उसमें आसक्त नहीं होता अथवा उसमें प्रसन्न नहीं होता—यही उसकी दीक्षा है। और जो व्यक्ति भोजन करता है, पीता है और रतिका अनुभव करता है—वह उपसदोंकी सदृशताको प्राप्त होता है। जो व्यक्ति हँसते हैं, खाते-पीते हैं, वे स्तुतशस्त्रकी समानताको प्राप्त होते हैं। तथा जो तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य वचन हैं—वे इसकी दक्षिणा हैं।

घोर आङ्गीरस ऋषिने देवकी पुत्र कृष्णको यह यज्ञ दर्शन सुनाया था। इससे अन्य विषयोंमें तृष्णा रहित हुआ जाता है। इस विद्याके अन्तमें तीन मन्त्रों का जप करना होता है—(१) तू अक्षय है, (२) तू अच्युत है और (३) तू अतीव सूक्ष्म प्राण है। इसके विषयमें दो ऋचाएँ हैं—'आदित् प्रत्नस्य रेतसः और 'उद्वयं तमसापरि।' पहले मंत्रका तात्पर्य है पुरातन प्रकाश—सर्वत्र व्याप्त प्रकाश—परमब्रह्ममें स्थित देदीप्यमान तेज; दूसरे मंत्रका अर्थ है—अज्ञान रूप अन्धकारसे श्रेष्ठ ज्योतिका दर्शन होने पर प्रकाशमान सर्वोत्तम ज्योतिको प्राप्त हुआ जा सकता है।

'मन ब्रह्म है'—यह अध्यात्मिक दृष्टिकी उपासना है। तथा 'आकाश ब्रह्म है'—यह अधिदैवत दृष्टिकी उपासना है। यह मन संज्ञक ब्रह्म चार पादोंवाला है। वाक्, प्राण, चक्षु और श्रोत्र—ये चार पाद हैं। यह अध्यात्म है। अग्नि, वायु, आदित्य और दिशाएँ—

ये चार पाद आधिदैवत हैं। वाक्, ही ब्रह्मका चौथा पाद है; वह अग्निरूप ज्योतिसे दीप्त होता है और तपता है। जो ऐसा जानता है, वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेजके कारण देदीप्यमान होता है और तपता है।

आदित्य ही ब्रह्म है। उसकी व्याख्याकी जाती है—पहले यह असत् ही था। पीछे सत् (कार्याभिमुख) हुआ। वह अंकुरित हुआ। पुनः वह एक अण्डेमें परिणत हुआ। वह एक वर्ष तक उसी प्रकार पड़ा रहा। फिर वह फूटा; दो खण्ड हुए। उनमेंसे एक खण्ड रजतका और दूसरा खण्ड सुवर्णका हुआ। रजतमय खण्ड पृथ्वी है और सुवर्णमय खण्ड द्युलोक है। उस अण्डेका जो जरायु (स्थूल गर्भवेष्टन) था, वे पर्वत है, जो उल्ब (सूक्ष्म गर्भ वेष्टन) था, वह मेघोंके सहित कुहरा है। धमनियाँ—नदियाँ हुई, वस्तीगत जल—समुद्र हुआ। फिर उससे आदित्य उत्पन्न हुआ। उसके उत्पन्न होते ही बड़े जोरोंका शब्द हुआ, उसीसे समस्त प्राणी और सारे भोग उत्पन्न हुए। इसीसे इसका उदय और अस्त होने पर शब्द युक्त घोष उत्पन्न होते हैं तथा सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग भी उत्पन्न होते हैं। जो इस प्रकार जान कर आदित्यकी 'यह ब्रह्म है', ऐसी उपासना करता है, वह आदित्य का सामीप्य लाभ करता है।

—त्रिदण्ड स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीश्रीतुलसी देवी

श्रीतुलसी देवी श्रीकृष्णकी परम प्रिय हैं। ये तदीयवस्तु और महाभागवत हैं। ये जगत्के कल्याण के लिये वृक्ष कुलमें आविभूत होने पर भी वृक्ष नहीं हैं। जिस प्रकार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्यकुलमें आविर्भूत होने पर भी मनुष्य नहीं हैं, भगवान् मत्स्यदेव मत्स्यकुलमें, श्रीकुर्मदेव कुर्म कुलमें (कच्छप के वंशमें) और श्रीवराह भगवान् शूकर वंशमें अवतीर्ण होने पर भी जिस प्रकार ये मछली, कछुआ और शूकर नहीं हैं—साक्षात् भगवान् हैं; जिस प्रकार राममक्त हनुमान जी वानर वंशमें, गरुड़जी पक्षी कुलमें और भक्त प्रह्लाद दैत्यवंशमें आने पर भी वे पशु, पक्षी और दैत्य नहीं हैं—भगवान्के पार्षद भक्त हैं; जिस प्रकार श्रीशालग्राम या श्रीविग्रह शिला-(पत्थर) वंशमें आविर्भूत होने पर भी शिला नहीं—साक्षात् परब्रह्म हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण प्रिया श्रीतुलसी देवी श्रीनारायणकी सेवा करनेके लिये वृक्ष-वंशमें अवतीर्ण होने पर भी वृक्ष नहीं—भगवान् कृष्णकी परम प्रिया है। इसीलिये जगद्गुरु श्रीश्रीप्रभुपादने श्रीतुलसी देवीको "वार्क्षीवतार" कहा है। वार्क्षीवतारका अर्थ है—वृक्षरूपमें अर्चावतार श्रीतुलसी देवी। वृक्ष + ष्ण = वार्क्ष + अर्चा + अवतार = वार्क्षीवतार। इसीलिये शास्त्रमें ऐसा कहा गया है—

भागवत, तुलसी, गङ्गाय भक्तजने।
चतुर्द्धा विग्रह, कृष्ण एइ चारिजने॥
तदीय तुलसी-वैष्णव-मथुरा-भागवत।
एइ चारिर सेवा हय कृष्णेर अभिमत॥

(चै० च० म० २२।१२)

श्रीनारायण पृथ्वी पर श्रीशालग्रामके रूपमें आविर्भूत हैं। श्रीनारायणकी सेवा करनेके लिये उनकी शक्ति श्रीतुलसी देवी भी वृक्षके रूपमें प्रकाशित हैं। इसीलिये श्रीतुलसी बिना श्रीनारायणकी सेवा नहीं होती। शास्त्रमें तुलसीदेवीको लक्ष्मीसे अभिन्न बतलाया गया है—

नावज्ञा जातु कार्या सा वृक्षभावान्मनिषिभिः ।
यथा हि वासुदेवस्य वैकुण्ठे भोग विग्रहः ॥
शालग्राम-शिलारूपं स्थावरं भूवि दृश्यते ।
यथा लक्ष्मैकमापन्ना तुलसी भोगविग्रहा ॥
अपरं स्थावरं रूपं भुवि लोकहिताय वै ।
स्पृष्टा दृष्टा रुचिरा च महापातकनाशिनी ॥
(पद्मपुराण)

तुलसीको वृक्ष मान कर अवज्ञा नहीं करनी चाहिये । जिस प्रकार लोगोंके कल्याणके लिये श्रीनारायण पृथ्वीपर शालग्रामरूपमें प्रकटित हैं, उसी प्रकार नारायणी शक्ति भी लोगोंके कल्याणके लिये पृथ्वी पर तुलसीके रूपमें विराजमान हैं । इसीलिये तुलसीका दर्शन, तुलसीका स्पर्शन या उनकी सेवा करनेसे महापातक भी दूर हो जाते हैं ।

अगस्त संहितामें देखा जाता है—

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा ।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैक पावनी ॥

जनकनन्दिनी श्रीसीतादेवी जिस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रकी प्रिया हैं, उसी प्रकार निखिल लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रीतुलसी देवी भी श्रीहरिकी प्रिया हैं ।

श्रीकृष्ण विषय विग्रह हैं और श्रीतुलसी आश्रय-विग्रह हैं । श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं और श्रीतुलसी स्वरूपशक्ति हैं । इसीलिये तुलसीको वृक्ष समझ कर अवज्ञा नहीं करनी चाहिये । उनकी अवज्ञा करने वाला महा अपराधी होता है तथा नरकका भोग प्राप्त होता है । वे साक्षात् वृन्दादेवी हैं—श्रीकृष्णकी लीला शक्ति हैं ।

वैकुण्ठेश्वरी श्रीतुलसी अप्राकृत वस्तु हैं । ये प्राकृत-धन-सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी-श्रीलक्ष्मीदेवी के अवतार नहीं हैं । लक्ष्मी दो हैं—(१) वैकुण्ठेश्वरी महालक्ष्मी और (२) प्राकृत गुणमयी लक्ष्मी । प्राकृत गुणमयी लक्ष्मी और महालक्ष्मी एक नहीं हैं । गुणमयी लक्ष्मी प्राकृत अर्थ-सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी हैं और महालक्ष्मी चिन्मयी सम्पद्रूपा और प्रेमवती हैं । आजकल जिस लक्ष्मीजीकी पूजा होती है, वह प्राकृत सत्त्वगुणमयी देवी हैं अर्थात् एक आधिकारिक देवता विशेष हैं । इसीलिये लक्ष्मीपूजा देव-देवी पूजाके अन्तर्गत है । देव-देवियाँ—सभी जीव-श्रेणीके अन्तर्गत हैं, उनमें कोई ईश्वर नहीं हैं । परन्तु महालक्ष्मी स्वरूप शक्ति—गुरुतत्त्व हैं, वे जीवतत्त्व नहीं हैं । तुलसीजी नारायणकी कान्ता और ब्रह्मा-शिव आदि देवताओंकी भी पूजनीया या उपास्या है । इनकी पूजा या सेवा साक्षात् भगवान्‌की ही सेवा है । इनकी कृपासे भक्ति और सम्पद् दोनों की ही प्राप्ति होती है । अतएव भक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले सबके लिये ही तुलसी आदरणीय, पूजनीय और सेवनीय हैं, इसमें सन्देह ही क्या है ?

जगत् गुरु श्रीजीवगोस्वामीने प्रीति-सन्दर्भमें इस प्रकार लिखा है—

"साधारण लक्ष्मी प्राकृत-सम्पत्ति (सांसारिक अर्थ) की अधिष्ठात्री देवी हैं । इस लक्ष्मीका पति वही व्यक्ति होता है जो अपने पूर्व पुण्य-कर्मोंके फलस्वरूप उस सम्पतिको भोग करनेका अधिकारी होता है ।"

श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीसनातन गोस्वामीने भी बृहद्भागवतामृत नामक स्वरचित ग्रन्थमें ऐसा लिखा है—

'महालक्ष्मीकी अनेक मूर्तियोंमेंसे जो मूर्त्ति सम्पत्ति दान करती हैं, लोकपाल आदिकी विभूतियों की अधीश्वरी और अणिमा आदि महासिद्धियोंको देनेवाली हैं, उन धन-ऐश्वर्य आदि प्रदान करनेवाली लक्ष्मी देवीका मुमुक्षु, मुक्त और भक्तजन, ये लोग परित्याग कर देते हैं । इसका कारण यह है कि ये लक्ष्मीदेवी प्रसन्न होने पर विभूति और वैराग्य ही

प्रदान करती हैं, परन्तु इस प्रकारकी विषय भोगरूप विभूति मुक्तिके मार्गमें बाधक है।

धनदात्री लक्ष्मी बड़ी चंचला होती हैं। दुर्वासा-मुनिके अभिशापके कारण ये लक्ष्मीजी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहतीं, बल्कि इधर-उधर अपना स्थान बदलती रहती हैं तथा अपने आश्रितका भी अकस्मात परित्याग कर देती हैं। इस चंचला लक्ष्मीकी अपेक्षा भी नवीन भक्तजन श्रीभगवानको अधिक प्रिय होते हैं। यह चंचला लक्ष्मी वैकुण्ठ स्थित श्रीनारायणकी प्रियतमा महालक्ष्मीकी विभूति या अंश होनेके कारण तत्सादृश्यहेतु भगवानकी परिगृहीता हैं। इसीलिये समुद्र मन्थनके समय भगवानने उनको अपने वक्षःस्थल पर धारण किया था ऐसा सुना जाता है। परन्तु भगवत्प्रियतमा महालक्ष्मीदेवी नित्यकाल भगवानके समीप रहती हैं तथा भगवानकी भाँति भक्तजन द्वारा सेवित या आराधित होती हैं। वे कभी भी भक्तों द्वारा उपेक्षित नहीं हो सकतीं। भक्त-जन इनकी विभूतिस्वरूपा प्राकृत अर्थसम्पत्तिकी देवी साधारण और चंचला लक्ष्मीका ही परित्याग करते हैं। दूसरी तरफ महालक्ष्मी भगवानके वक्षः-स्थल पर स्थिररूपसे विराजमान रहती हैं। ये चंचला नहीं हैं।

समस्त देवताओंसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मासे शिव श्रेष्ठ हैं। शिवसे श्रीदेवी श्रेष्ठ हैं, उनसे भी मुनीजन श्रेष्ठ हैं, मुनिलोगोंसे भी भक्तजन श्रेष्ठ हैं। यहाँ पर 'श्रीशब्देन विभूति-अधिष्ठात्री श्रीमहा-लक्ष्मी अंशभूतैव लक्ष्मीरभिधीयते, न तु महालक्ष्मीः। अर्थात् 'श्रीशब्दसे यहाँ पर विभूतियोंकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मीकी अंशभूता लक्ष्मीकी ही बात कही गयी है, महालक्ष्मीसे यहाँ सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि भगवानकी प्रियतमा महालक्ष्मी तो भगवद्भक्तोंकी भी परमपूज्या हैं। अतएव वे भक्तोंसे अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। इसलिये यहाँ पर भगवती न कहकर 'देवी' कहा गया है।

भक्तसेवा परित्याग करनेसे भगवानकी सेवा नहीं होती। जो लोग भक्तसेवा छोड़कर केवल भगवानकी ही सेवा करनेकी छलना करते हैं वे दांभिक हैं। भगवान ऐसे दांभिक लोगोंकी सेवा ग्रहण नहीं करते। अतः भक्तजन बड़े ही आदर और प्रीतिके साथ जगद्गुरु श्रीतुलसीजीकी सेवा किया करते हैं। श्रीतुलसीसेवा द्वारा भगवान बड़े प्रसन्न होते हैं। श्रीतुलसीजी भक्तिकी जननी और प्रेमको देनेवाली हैं। नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीनारदजी और स्वयं भगवान् श्रीचैतन्यदेवने श्रीतुलसीकी सेवा करने के लिये उपदेश प्रदान किये हैं; साथ ही स्वयं इसका आचरण कर आदर्श भी स्थापन किये हैं।

श्री हरिदास ठाकुरने वेश्याको उपदेश दिया था—

तिरन्तर नाम कर तुलसी सेवन।
अचिरात् पावे सबे कृष्णेर चरण॥

(चै. च. अ. ३।३६)

श्रीनामाचार्य हरिदास ठाकुरका उपदेश—

तुलसी सेवन करे, चर्वण, उपवास।
इन्द्रिय दमन हैल प्रेमेर प्रकाश॥

(चै. च. अ. १४०३)

देवर्षि नारदके उपदेश—

'तुलसीजीकी परिक्रमा और तुलसीकी सेवा करो और साथ-साथ निरन्तर कृष्णनामका कीर्तन करो।'

(चै. च. म. २४।२५५ से अनुदित)

'श्रीचैतन्य चरितामृत' से ऐसा पता चलता है कि स्वयं भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजी प्रतिदिन सवेरे स्नान करके विधिपूर्वक श्रीविष्णुका पूजन करते थे और तदनन्तर तुलसीमें जल दान करके भोजन करते थे। वे तुलसीमें जल प्रदान करके श्रीतुलसी परिक्रमा भी करते थे। वे एक छोटेसे मिट्टीके गमलेमें श्रीतु-लसीका पौधा लगा कर रखते थे; प्रतिदिन स्नानके पश्चात् उसमें जल देते थे और उसकी परिक्रमा करते

थे। वे कहा करते थे कि 'मैं तुलसीके दर्शन किये बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे मछली जलके बिना नहीं रह सकती है।' जब भगवान श्रीचैतन्यदेव संख्यानाम करते हुए हुए चलते थे, तब एक आदमी तुलसी देवीको लेकर आगे-आगे चलता था; महाप्रभुजी उसके पीछे-पीछे तुलसीका दर्शन करते हुए चलते थे; उनकी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंका धारा निकलता रहती थी। यदि वे कहीं बैठ कर संख्यानाम करते, तो वहीं सामने ही श्रीतुलसीजी को रख लेते और तुलसीजीका दर्शन करते हुए संख्या नाम जपते जाते थे। संख्यानाम समाप्त हो चुकने पर वे पुनः तुलसीजीको साथ लेकर उठते और नियत स्थान पर रखते थे। यह कितना महान आदर्श है, तुलसी सेवा का!

महाविष्णुके अवतार श्रीअद्वैताचार्यके आदर्शमें ऐसा ही देखा जाता है—

तुलसीदल-मात्रेण जलस्य चुलुकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो-भक्तवत्सलः॥

—श्री अद्वैताचार्यजी इस श्लोका अर्थ इस प्रकार लगाते थे—जो व्यक्ति श्रीकृष्णको तुलसी पत्र और जल प्रदान करता है, श्रीकृष्ण उस व्यक्तिका ऋण चुका नहीं पाते हैं। तब वे ऐसा विचार करते हैं कि मैं कैसे भक्तका ऋण चुकाऊँ? मेरे पास तुलसी-पत्र और जलके बदलेमें देनेके लिये तो कुछ भी नहीं है, फिर वे उस भक्तके निकट स्वयं बिक जाते हैं और इस प्रकार उस ऋणको चुकाते हैं—इस प्रकार सोच कर श्रीअद्वैताचार्यजी श्रीकृष्णके चरण कमलोंमें प्रतिदिन गंगाजल और तुलसी मंजरी समर्पण करते थे।

श्रीतुलसी-सेवाके माहात्म्यके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि—'तुलसी भगवत्-प्रीतिको बढ़ानेवाली सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी और सर्वआधि-व्याधि हारिणी है। श्रीतुलसीजीका दर्शन करनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उनमें जल देनेसे नरकका भय दूर हो जाता है, तुलसी रोपण करनेसे भगवत प्राप्ति होती है, उनका स्पर्श करनेसे शरीर पवित्र हो जाता है, प्रणाम करनेसे सारे रोग दूर हो जाते हैं और श्रीहरिके चरण-कमलोंमें तुलसी अर्पण करनेसे प्रेम भक्ति लाभ होती है।

जिसके घरमें प्रतिदिन तुलसीकी पूजा होती है, उसका सब प्रकारसे मङ्गल होता है; यमदूत उस गृहके समीप कभी नहीं फटकते। तुलसीके रोपण, सेवन, दर्शन और स्पर्शनसे चित्त निर्मल और पवित्र हो जाता है, तथा आदर पूर्वक उनकी आराधना करनेसे सब प्रकारकी मनोभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती है। प्रतिदिन ४ बार प्रदक्षिण करके तुलसीको प्रणाम करनेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं। प्रतिदिन तुलसीका दर्शन, स्पर्शन, चिन्तन कीर्तन, प्रणाम, गुण-श्रवण और सेवन करनेसे महामंगलकी प्राप्ति होती है। जो लोग प्रतिदिन इस प्रकारसे तुलसीजीकी सेवा करते हैं, वे नित्यकाल आनन्दमय धाम—श्रीवैकुंठमें निवास करते हैं। श्रीयमराजने अपने दूतोंको ऐसी आज्ञा दे रखी है कि 'दूतों! जिसके गलेमें तुलसीकी माला हो, जो तुलसीका नाम कीर्तन करते हैं, तुलसीकी सेवा करते हैं, उनके निकट भूलकर भी कभी नहीं जाना।'

नर्मदा-दर्शन, गंगास्नान और तुलसी-पत्रका स्पर्शन—इन तीनोंका एक समान पुण्य होता है। जन्माष्टमी के दिन उपवास करनेका जो फल होता है, तुलसीकी सेवा करनेसे वही फल लाभ होता है। स्त्री या पुरुष—जो कोई भी तुलसीकी पूजा करते हैं उनको अपना मनोवांछित फल प्राप्त होता है। तुलसी सेवामें सब को अधिकार है।

शास्त्रोंमें और भी कहा गया है कि तुलसी पत्र, तुलसी-पुष्प, तुलसी-काष्ठ, तुलसीका छिलका, तुलसी की डाल, तुलसीकी जड़ और तुलसीके मूलकी मिट्टी—ये सभी महापवित्र और मङ्गलदायक हैं। जिस प्रकार गङ्गाका नाम-कीर्तन करनेसे सारे पाप दू

हो जाते हैं, उसी प्रकार तुलसीके नामकीर्तनसे तथा हरिगुण-गान करनेवालेके प्रति भक्ति करनेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं। जहाँ श्रीतुलसीदेवीका वास होता है और जहाँ श्रीमद्भागवतका पाठ होता है, वहाँ श्रीहरिका निवास होता है। तीनों संध्याओंमें श्रीतुलसीका नाम उच्चारण करनेसे हजारों गोदानका फल होता है। तुलसी-सेवा द्वारा दरिद्रता दूर हो जाती है तथा धनकी प्राप्ति होती है। प्रयागमें स्नान करनेका जो फल होता है, काशीमें शरीर-त्याग करनेका जो पुण्य होता है, तुलसी सेवासे भी वही फल मिलता है। तुलसीमें जल-सिंचन करनेसे उस जलके द्वारा त्रिभुवन तृप्त होता है।

जहाँ तुलसी नहीं होती, वह स्थान श्मशानके समान अपवित्र होता है। तुलसीके समीप मृत्यु होनेसे नरककी यन्त्रणा भोग नहीं करनी पड़ती, बल्कि परमपदकी प्राप्ति होती है। जो सवेरे उठकर सबसे पहले श्रीतुलसीका दर्शन करते हैं, वे परम पवित्र हो जाते हैं, उनको कोई पाप स्पर्श नहीं करता। बड़े सौभाग्यसे श्रीतुलसीकी सेवामें रुचि होती है।

तुलसीदेवी माधवकी प्रियतमा हैं। इसलिये तुलसी द्वारा माधव कृष्णकी ही सेवा करनी चाहिए। केवल भगवानकी सेवाके लिये ही तुलसी पत्रका चयन करना चाहिए—यही शास्त्रकी विधि है। भगवानकी सेवाके अतिरिक्त अपने लिये अर्थात् ज्वर, सर्दी-जुकाम आदि रोगोंको दूर करनेके लिये औषधिके रूप में व्यवहार करनेसे श्रीतुलसीके चरणोंमें अपराध होता है तथा अमङ्गल होता है। शास्त्रमें प्रसादी तुलसी भक्षणका प्रचुर माहात्म्य देखा जाता है। भगवदर्पित तुलसीके सिवा अनर्पित तुलसी भक्षण नहीं करना चाहिए। भगवत् सेवाके अतिरिक्त दूसरे कामके लिये तुलसीका चयन नहीं करना चाहिए। ऐसा करनेसे अपराध होगा।

अब प्रश्न हो सकता है कि तुलसी द्वारा विष्णु पूजाके अतिरिक्त अन्यान्य देव-देवियोंकी पूजा करनी चाहिए या नहीं? इसका उत्तर यह है कि—कदापि नहीं। श्रीमहालक्ष्मीजी ब्रह्मा और शिव आदि देवताओंकी पूजनीया और उपास्या हैं। वे महालक्ष्मीजी ही जब भूलोकमें अवतीर्ण हैं, तब उनके द्वारा देव-देवियोंकी पूजा जो महाअमङ्गलजनक और नरक-प्रापक है, यह कहना ही अधिक है। इसीलिये शास्त्र ऐसा कहते हैं—

तुलसी-दलमादाय योऽन्यं देवं प्रपूजयेत्।
ब्रह्महा स हि गोघ्नश्च स एव गुरुतल्पगः॥
(वायुपुराण)

जो व्यक्ति तुलसी पत्रसे अन्यान्य देव-देवियोंकी पूजा करता है, वह निश्चय ही ब्रह्महत्या, गोहत्या और गुरुपत्नी-गमनके पापका भागी होता है।

एक और प्रश्न है—श्रीराधारानीके चरणोंमें अथवा श्रीगुरुदेवके चरणोंमें तुलसी दी जा सकती है या नहीं?

उत्तर—नहीं। श्रीराधिकाजी या श्रीगुरुदेवके चरणोंमें तुलसी देनेसे अपराध होता है। जिस प्रकार कृष्ण विष्णुतत्त्वोंके अंशी हैं, उसी प्रकार श्रीमती राधिकाजी भी लक्ष्मियोंकी अंशिनी हैं। उनकी सखियाँ उनसे अभिन्न—उनकी कायव्यूह स्वरूपा हैं। श्रीतुलसी देवी श्रीमतीके आनुगत्यमें कृष्ण-सेवा करती हैं—

पूर्णशक्तिरभिन्ना च श्रीमती वार्षभानवी।
वैभवरूपिणी तस्या वृन्दादेवी प्रकीर्तिता॥
नित्यं श्रीतुलसीदेवी सेवते वार्षभानवीम्।
अन्योऽन्यमेव विश्रंभभावस्तयोरवस्थितः॥
अन्येषान्तु ततस्तस्मिन्नधिकारः कदाचन।
मोहात् प्रवर्तमानस्तु भवेत्तत्रापराधवान्॥
दद्यात् श्रीतुलसीं तस्मात् श्रीदेव्याः करपल्लवे।
शुद्धो वैष्णवो हि नित्यं पादयोर्न कथञ्चन॥
(अनन्त संहिता

अंशिनी शक्ति श्रीराधारानीकी वैभवरूपा श्रीतुलसी देवी विश्रंभ भावसे श्रीराधाकी सेवा करती हैं। परन्तु इसीलिये कोई शुद्ध वैष्णव श्रीतुलसी देवी को (एक कृष्णशक्तिको) दूसरी कृष्णशक्ति (श्रीमती राधादेवी) के चरण-प्रान्तमें अर्पण नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अज्ञानतासे अथवा मोहवश ऐसा करे, तो वह अपराधका भागी होता है। इसीलिये शुद्धभक्तजन श्रीमतीजीके कर-पल्लवोंमें ही तुलसी अर्पण करते हैं।

श्रीगुरुदेव भी कृष्णकी शक्ति हैं। अतएव उनके चरणोंमें भी तुलसी अर्पण करनेसे महा अपराध होता है। श्रीतुलसीदेवी स्वयं आश्रय-जातीया गोविन्दप्रिया माधव-तोषिणी हैं। उनके द्वारा विषय-विग्रह श्रीहरिका ही अर्चन-पूजन किया जा सकता है। उनसे आश्रय-जातीय तत्त्व श्रीगुरुदेवकी सेवा या अर्चन नहीं किया जा सकता है। अतएव आश्रय-विग्रह या स्वरूप-शक्तितत्त्व श्रीगुरुदेव, सीतादेवी या श्रीमती राधिकाजीके चरणोंमें तुलसी देना अपराध है। स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीनारायण, श्रीरामचन्द्र, श्रीनृसिंहदेव, श्रीवामन देव, श्रीगौरांग देव आदि विष्णुतत्त्व या विषय-विग्रहोंके चरणोंमें तुलसी देना चाहिए। शक्ति तत्त्व या आश्रय तत्त्व (गुरुतत्त्व आदि) के चरणोंमें श्रीतुलसी देना अपराधजनक और नरकप्रापक है—

तुलस्या विषयं तत्त्वं विष्णुमेव समर्चयेत् ।
सा देवी कृष्णशक्तिर्हि श्रीकृष्णवल्लभा मता ॥
अतस्तां वैष्णवीं देवीं नान्यपदे समर्पयेत् ।
अर्पणे तत्त्वहानिः स्यात् सेवापराध एव च ॥
अतत्त्वज्ञस्तु पाषण्डो गुरुत्वस्य पादयोः ।
अर्पयन् तुलसीं देवीमर्जयेन्नरकं पदम् ॥

(अनन्त संहिता)

—सुबल चन्द्र भक्ति शास्त्री
(काव्य-व्याकरण पुराण-वेदान्त तीर्थ)

रे मन, जनम अकारथ खोइसि

रे मन, जनम अकारथ खोइसि ।
हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्ही, उदर भरे परि सोइसि ॥
निसि-दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि ।
गोड़ पसारि परयौ दोउ नीकैं, अब, कैसी कहा होइसि ॥
काल-जमनि सौं आनि बनी है, देखि, देखि मुख रोइसि ।
सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै, चले जाव भई पोइसि ॥

भागवत

जो भगवान्‌के साथ सम्बन्ध रखते हैं, उन्हीं को 'भागवत' कहा जाता है। इसलिये इस पत्रिका का नाम भी 'भागवत' रक्खा गया है। इस पत्रिका में भगवत् सम्बन्धी बातें ही प्रकाशित होती हैं। भगवद्भक्तको भी 'भागवत' कहा जाता है। परन्तु समस्त-शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवतको ही भागवत-नामसे पहिले समझना चाहिये। भक्त भागवत और ग्रन्थ-भागवत ये दोनों ही हम लोगों पर कृपा करने के लिये मौजूद हैं। भक्त-भागवतका आराध्य तथा अवलम्ब्य ग्रन्थ-भागवत ही है। इसलिये श्रीमद्-भागवत ही सर्वश्रेष्ठ हैं। अठारह पुराणोंमें से भागवतको महापुराण कहा जाता है।

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।
कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः॥

सनातनधर्म-रक्षक कृष्णचन्द्रके गोलोक गमन होनेसे कलियुगमें नष्टदृष्टि मनुष्योंके लिये इस पुराण-सूर्यका प्रकाश हुआ है। नष्टदृष्टिका तात्पर्य यह है कि कलिमें प्रत्येक मनुष्यकी आँखें नाना प्रकारके अनर्थ रूपी अन्धकारसे ढकी हुई हैं। सूर्यका उदय होनेसे हम लोगोंकी आँखें खुल जाती हैं। सूर्यके अभावसे नेत्र रहने पर भी दर्शनशक्ति कम हो जाती है। बल्कि सूर्यसे भागवतका कुछ भेद है। सूर्यसे बाहरी वस्तुका प्रकाश होता है—चोर डाकुओं तथा भूत-प्रेतोंका डर चला जाता है— जाड़ा नष्ट होता है, परन्तु भागवत-सूर्यसे जन्म-मृत्युके भय, कर्म-ज्ञानादि की जड़ताका नाश और आत्माका प्रकाश होता है।

श्रीमद्भागवत कृष्णद्वैपायन व्यासदेवका समाधि लब्ध शास्त्र हैं। भागवतमें लिखा है—

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायां च तदपाश्रयाम्॥
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतंचाभिपद्यते॥
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा॥
(१,७, ४-७)

भगवान् व्यासदेवने एकाग्र चित्तसे ध्यान करते हुए तीन वस्तुओंका दर्शन किया—परम पुरुष भगवान् कृष्णचन्द्र, उनकी माया तथा बद्ध जीव। भगवान्‌के पीछे बैठी हुई मायासे जीवोंका मोहन होता है। जीवगण मायासे श्रेष्ठ वस्तु होने पर भी मायासे प्रकटित वस्तुमें ममत्वके कारण मायाके पंजेमें फँसे हुए कष्ट पाते हैं। इसको अनर्थ कहा जाता है। इससे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय है भक्तियोग। साक्षात् भगवान्‌में भक्ति होनेसे ही मायाजालसे छुटकारा मिल सकता है। इसी भक्तियोगको भलीभाँति समझानेके लिये विद्वान् व्यासदेव अज्ञानी जीवोंके लिये भागवतकी रचना की है। इसके श्रवणसे ही परम पुरुष भगवान् कृष्णचन्द्रके श्रीचरणोंमें भक्तिका उदय होता है। अतः भागवत ही सकल कल्याणके मूल हैं।

भगवान्‌से पृथक रहना ही बद्ध जीवोंकी प्रकृति है। वे अपनी इन्द्रियोंके सुखका ही ध्यान करते हुए उसीकी खोजमें मस्त रहते हैं। परन्तु व्यासदेवके समीप नारदका यह उपदेश है कि—

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीररंहसा॥
(भागवत १-५-१८)

चौदहों भुवन भटकते हुए जिस वस्तुको प्राप्त नहीं किया जाता, उसीकी प्राप्तिके लिये पण्डित व्यक्ति प्रयत्न करते हैं; परन्तु प्रयत्न किये बिना दुख जैसे कालके प्रभावसे स्वयं आ पहुँचता है वैसे ही सांसारिक सुख भी प्राप्त किया जाता है। अतएव सांसारिक सुख-दुःखके अतिरिक्त आत्मानन्दके लिये ही प्रार्थना करनी चाहिये; जिसका विचार केवल श्रीमद्भागवतमें ही सुन्दर रूपमें लिखा है। इसलिये कहा है—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञानविरागभक्ति सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तत्शृण्वन् सुपठन् विचारण परो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥
(भागवत १२-१३-१८)

श्रीमद्भागवत विशुद्ध पुराण और वैष्णवोंको परम प्रिय है। इसमें परमहंसगणके लिये निर्मल व परम ज्ञानका कीर्त्तन है तथा ज्ञान, वैराग्य, भक्तिके साथ नैष्कर्म्य प्रकाशित हुआ है। भक्तिके साथ इसका श्रवण, पठन तथा विचार करनेसे विशेष मुक्ति प्राप्त की जाती है।

अब प्रश्न हो सकता है कि किससे भागवतका श्रवण करना चाहिये। इसका उत्तर भागवतमें ही दिया गया है—

सतां प्रसंगान्मम वीर्य्यसम्विदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति
(भा० ३-२५.२५)

साधु लोगोंके समीप भगवान्के वीर्य विषयक विचित्र बातें सुननी चाहिये, जिसके सुननेसे हृदय तथा कर्णको आनन्द प्राप्त होता है और श्रद्धा, रति तथा भक्तिका उदय होता है।

भागवत-श्रवणका फल भी अन्यान्य साधनोंसे श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति श्रद्धाके साथ भगवद्भक्तके मुखारविन्दसे श्रीमद्भागवतका श्रवण करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् प्रवेश करते हुए चित्तकी मलीनताका नाश करते हैं और नित्यकाल वहाँ अपना निवास-स्थान बना लेते हैं। जैसे भागवतमें कहा है—

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥
धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति।
मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थ स्वशरणं यथा॥
(२-८-५, ६)

भगवान् कृष्णचन्द्र कथारूपमें श्रवणकारी व्यक्तिके हृदय-कमलमें प्रवेश करके उस स्थानको पवित्र करते हैं तथा वहाँ अपना निवास-स्थान बना लेते हैं। वह पवित्रता शरतकालके जलके समान स्वभावतः ही होती है अर्थात् वर्षाऋतुमें अधिक पानी बरसनेके कारण नदी-तालाब आदि सब स्थानोंका पानी मैला हो जाता है, उसकी सफाई करनेका प्रयोजन होनेसे किसी बर्तनमें रखकर फिल्टरसे अथवा किसी फलकी सहायतासे वह कार्य सम्पादित होता है। उससे केवल उसी पात्रका पानी मात्र निर्मल होता है। परन्तु शरत्कालमें सभी स्थानोंका पानी प्रकृतिसे ही स्वच्छ हो जाता है। भगवत् कथा श्रवणसे भी चित्त स्वयं निर्मल हो जाता है। कर्म, ज्ञान, योगादि साधनोंसे उतना निर्मल नहीं होता। जिनका हृदय-कमल निर्मल हो जाता है, वहाँ भगवान् सदा निवास करते हैं। सुतरां वह कथा श्रवणकारी भक्त भगवत् चरणारविन्दको फिर कभी नहीं छोड़ता है। जैसे किसी पथिकके मार्ग भूल कर भटकते हुए अपने घरमें आ पहुँचनेसे उसकी सब तकलीफें छूट जाती हैं, वैसे ही वह भक्त सब प्रकारके कष्टसे मुक्त होकर परम शान्तिपूर्ण स्थान भगवत् पदकमलके समीप निवास करता है।

राम नाम की महिमा

जो दशरथ के प्राण—दुलारे कौशल्या के,
हुए जगत विख्यात—ताड़का मारन बांके।
जिसने पौरुष धनुष—तोड़ते समय दिखाया,
शीश झुकाकर परशुराम का शीश झुकाया।

सेवर जैसी समझ अवध की सारी माया,
लिया गहन का मार्ग वंश का वचन निभाया।
चित्रकूट में पहुँच गया जिनका मानस रम,
उन्हीं राम का नाम, मनस्थित रहे मनोरम॥ १॥

जिनकी छवि पर मुग्ध रहे सारी मातायें,
अलक लड़ेतें कहें, पुकारें कण्ठ लगायें।
क्रीड़ा करते देख, अवध के सब सुख पाये,
बालक खेलें संग, रंग में रंग जमाये।

धरें धनुष पर बाण हिरण के पीछे धायें,
सबके मन में चाह दृष्टि से राम न जायें।
मुनि वशिष्ठ तक ध्यान लगायें जिनका जम जम,
उन्हीं राम का नाम मनस्थित रहे मनोरम॥ २॥

जिनकी रज से हुई शिला में प्राण प्रतिष्ठा,
अमल ज्योति से जगी अटल मुनियों में निष्ठा।
छूकर जिनके चरण हुआ धोवर भी पावन,
लगा बाँटने तुरत चतुर चरणामृत भावन।

जिनके हित में जरठ-जटायू स्वर्ग सिधारा,
जिन्हें लगा उच्छिष्ट बेर सबरी का प्यारा।
कुछ दिन जिन पर पड़ी विरह की चोट धमाधम,
उन्हीं राम का नाम मनस्थित रहे मनोरम॥ ३॥

जिनकी सूरत देख उमा मूरत मुसकाई,
सुन्दर बरसी माल खसी सीता ने पाई।
पुष्पवाटिका तलक रूप में सिद्ध हुई है,
जनक संगिनी देख सुनयना सिद्ध हुई है।

जनक पुरी के मुग्ध सभी जिन पर नरनारी,
जिनका तेज विलोक, चकित नृप परिषद्हारी।
जिनके आगे वाण लंकपति ने तोड़ा दम,
उन्हीं राम का नाम मनस्थित रहे मनोरम ॥ ४ ॥

जिन पर मन से भरी जगत की सीता माता,
हुए निछावर बिना बिचारे लक्ष्मण भ्राता।
जिनके खातिर धर्म-नीति व्यवहार न तोड़ा,
छोड़ा सब कुछ किन्तु भरत ने प्यार न छोड़ा।

जिन्हें कष्ट के समय मिले साथी बन वासी,
जामवन्त सुग्रीव पवनसुत से विश्वासी।
मिला भेदिया जिन्हें विभीषण सा पावनतम,
उन्हीं राम का नाम मनस्थित रहे मनोरम ॥ ५ ॥

एक लाख सुत सवा लाख जिसके थे नाती,
उस रावण के गेह, रही फिर दिया न बाती।
जिस पर करुणा हुई, मिली उसको ही थाती,
जिस पर करुणा हुई, मिली उसको ही छाती।

किन्तु कभी भी नहीं, जिन्होंने समता छोड़ी,
निज उदारता कहीं नहीं थोड़ी भी-तोड़ी।
अन्त समय में दिया, सभी को स्वर्ग दमादम,
उन्हीं राम का नाम, मनस्थित रहे मनोरम ॥ ६ ॥

श्रीकमलाकर 'कमल'

श्रीव्यास-पूजा (गुरुपूजा) का आह्वान

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, पो०-चूँचूड़ा (हुगली),
१२ जनवरी, १९६२

प्रिय महानुभाव,

श्रीव्यासाभिन्न जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीकी आविर्भाव-तिथि-पूजाके उपलक्षमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उद्योगसे उपरोक्त ठिकाने पर आगामी १० फाल्गुन, २२ फरवरी बृहस्पतिवारसे १२ फाल्गुन, २४ फरवरी, शनिवार तक तीन दिन श्रीश्रीव्यासपूजाका विराट अनुष्ठान होगा। प्रतिदिन हरि-संकीर्तन, प्रवचन, भाषण, अञ्जलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान अङ्ग हैं।

प्रार्थना है, आप इष्ट मित्रों तथा बन्धुजनोंके साथ पधार कर भक्ति-उन्मुखी सुकृति अर्जन करें।

निवेदक—
गौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द

अवधूत गीता

एक बार यजातिके पुत्र धर्मविद् यदुने एक त्रिकाल दर्शी तरुण अवधूत ब्राह्मणको निर्भय विचरण करते हुए देखा । उन्होंने उससे प्रश्न किया—'हे ब्राह्मण ! आपको समस्त लोकोंकी सर्वोत्तम बुद्धि कहाँसे प्राप्त हुई ? जिसके बल पर आप परम विद्वान् होने पर भी बालकके समान बड़ी निर्भीकताके साथ पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ? आप कर्म करनेमें समर्थ, विद्वान् और निपुण हैं । आपका भाग्य और सौन्दर्य भी प्रशंसनीय है । वाणीसे अमृत टपक रहा है । फिर भी आप जड़ और उन्मत्तसे रहते हैं । आप पुत्र, स्त्री, धन आदि संसारके स्पर्शसे भी रहित हैं । मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आपको अपने आत्मामें ही ऐसे अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव कैसे होता है ? आप कृपा करके बताइये ।'

वह तरुण ब्राह्मण और कोई नहीं, ब्रह्मवेत्ता श्रीदत्तात्रेयजी थे । उन्होंने राजा यदुके प्रश्नको सुन कर कहा—'राजन् ! मैंने अपनी बुद्धिसे बहुत से गुरुओंका आश्रय लिया है । उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगतमें स्वच्छन्द विरचता हूँ । मैंने जिनको अपना गुरु बनाया है, उनके नाम ये हैं—

(१) पृथ्वी, (२) वायु, (३) आकाश, (४) जल, (५) अग्नि, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) कबूतर, (९) अजगर, (१०) समुद्र, (११) पतङ्ग, (१२) मधुकर, (१३) हाथी, (१४) शहद निकालनेवाला, (१५) हरिण, (१६) मछली, (१७) पिङ्गला वेश्या, (१८) कुरर पक्षी, (१९) बालक, (२०) कुँआरी कन्या, (२१) बाण बनानेवाला, (२२) सर्प, (२३) मकड़ी और (२४) भृङ्गी-कीट । राजन ! मैंने इन्हींके आचरणसे इस लोकमें अपने लिये शिक्षा ग्रहणकी है ।

(१) पृथ्वीसे शिक्षा

मैंने पृथ्वीसे धैर्य और क्षमाकी शिक्षा ली है । लोग पृथ्वी पर कितना आघात और क्या-क्या उत्पात नहीं करते; परन्तु वह न तो किसीसे बदला लेती है और न रोती-चिल्लाती है । उसी प्रकार दैवीमायाके वशीभूत आत्मीय स्वजनोंद्वारा उत्पीड़ित होनेपर भी धीर व्यक्ति कदापि सद्गुरुके पादपद्मोंसे विचलित न हों । पृथ्वीके ही विकार पर्वत और वृक्षसे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे उनकी सारी चेष्टाएँ सदा सर्वदा दूसरोंके हितके लिये ही होती हैं, उसी प्रकार साधु पुरुषको सहिष्णु होकर स्वयं कृष्णनाम करना चाहिये और संसारमें सर्वत्र कृष्णनामका प्रचार कर जगतका उपकार भी करना चाहिये ।

(२) वायुसे शिक्षा

वायु दो प्रकारका है—प्राणवायु और बाहरी वायु ।

(क) प्राणवायुसे शिक्षा—जैसे प्राणवायु आहार मात्रकी इच्छा रखता है, उसकी प्राप्तिसे ही सन्तुष्ट हो जाता है, वैसे ही गुरुदासको भी चाहिये कि जितनेसे जीवन-निर्वाह हो जाय, उतना ही भोजन करे । इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये बहुतसे विषय न चाहे । संक्षेपमें उतने ही विषयोंका उपयोग करना चाहिये जिनसे बुद्धि विकृत न हो, मन चंचल न हो और वाणी भगवत-इतर कथाओंमें न लग जाय । इस प्रकार बहुत रूखा और अनिवेदित द्रव्योंका आहार न करे । इससे चित्त चंचल होता है । साथ ही उसे आलस्य और वीर्यादिवर्द्धक द्रव्योंका भी वर्जन करना चाहिए, क्योंकि इनसे भी चित्तकी व्याकुलता बढ़ती है ।

(ख) बाहरी वायुसे शिक्षा—समस्त विषयोंकी सेवा करने पर भी गुरुदास किसीमें आसक्त न हों, ठीक उसी प्रकार जैसे वायु सर्वत्र विचरण करता है, परन्तु वह कहीं भी आसक्त नहीं होता; किसीका गुण-दोष ग्रहण नहीं करता। गन्ध वायुका गुण नहीं, पृथ्वी का गुण है। परन्तु वायुको गन्ध वहन करना पड़ता है। ऐसा करने पर भी वह सर्वदा शुद्ध ही रहता है, गन्धसे उसका सम्पर्क नहीं होता; वैसे ही गुरुदासका जब तक इस पार्थिव शरीरसे सम्बन्ध है, तब तक उसे इसकी व्याधि, पीड़ा, और भूख-प्यास आदिका भी वहन करता पड़ता है। परन्तु अपनेको शरीर नहीं—आत्माके रूपमें देखनेसे वह मायाके इन धर्मोंसे सर्वथा निर्लिप्त रहता है।

येतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः।
न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया॥
(श्रीमद्भा० १-११-३२)

(३) आकाशसे शिक्षा

जिस प्रकार आकाश सर्वव्यापी होने पर भी घट-पटों द्वारा परिच्छिन्न अथवा लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार देहके अन्तर्गत होने पर भी दीक्षाके प्रभावसे गुरुदास भी असत संगमें लिप्त न होकर परमात्मासे मिलते हुए भीतर-बाहर सेव्य-सेवक रूपमें स्थित रहे। आकाशसे दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि जिस प्रकार वायु द्वारा चलनेवाले बादलोंसे आकाश सर्वदा अछूता बना रहता है, उसी प्रकार गुरुदास भी कालके प्रभावसे क्षोभित होनेवाले लिंग-देहके प्रति आशक्त न हों।

(४) जलसे शिक्षा

जिस प्रकार जल स्वभावसे ही स्वच्छ, चिकना, मधुर और पवित्र करनेवाला होता है, वैसे ही गुरु-दासको भी निर्मल चरित्र, सर्वभूतोंके प्रति दयालु, मधुर भाषी तथा भगवन्नाम-रूप-गुण-लीला कथाओं के कीर्तन और उपदेशोंसे सबको पवित्र करनेवाला होना चाहिए।

(५) अग्निसे शिक्षा

(१) गुरुदास अग्निकी भाँति तेजस्वी, गुण द्वारा अविचल और उदासीन होकर पाप या पुण्यके झमेले में लिप्त न हों। वे अग्निकी भाँति कभी गुप्त और कभी व्यक्तरूपसे भूत भविष्यके पाप-पुण्यको जला कर केवल दाताओंके दिये हुए अन्नको ग्रहण करें। (२) जैसे अग्नि लकड़ी आदिके भीतर वर्तमान रहने पर भी केवल मंथन द्वारा प्रकट होती है, उसी प्रकार भगवान भी अपनी शक्तिके प्रभावसे गुणमय और चेतनमय जगतकी सृष्टि करके उसीमें प्रविष्ट रहने पर भी केवल श्रवण-कीर्तन आदि भक्तिके अङ्गोंके याजनसे ही गुरुदासके शुद्ध चित्तमें उदित होते हैं।

(६) चंद्रमासे शिक्षा

जिस प्रकार कालके प्रभावसे चन्द्रमाकी कलाएँ घटती-बढ़ती रहती है, परन्तु उससे चन्द्रमा न घटता है, न बढ़ता है; उसी प्रकार जन्मसे मरण तककी जितनी भी अवस्थाएँ है, सब शरीर की हैं, आत्मासे उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसा जान कर गुरुदास आत्माको जन्म-मरण आदि षड्विकारोंसे निर्लिप्त समझ कर सर्वदा भगवद्भजनमें तत्पर रहे।

(७) सूर्यसे शिक्षा

(१) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे समुद्रके जलको वाष्पके रूपमें खींच कर समयपर उसे बरसा कर पृथ्वीको तृप्त करते हैं, उसी प्रकार गुरुदासको भी चाहिए कि विषयी मनुष्योंके पाप-पुण्य द्वारा संप्रहीत धनको अथवा अन्यान्य विषयोंको अपनी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके भी उस धन या विषयोंको श्रीगुरुदेव और कृष्णको समर्पण कर दे और समय आने पर उनका भगवत् प्रसादके रूपमें सबको वितरण करे। उन विषयोंको अपने भोगके कार्योंमें न लगावे।

(२) जिस प्रकार सूर्यमें सूर्यमण्डल, किरणें और उसकी छाया—ये तीन चीजें होती हैं, उसी प्रकार परतत्त्व भी अपनी स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति और

छाया (माया) शक्तिसे समन्वित होते हैं। इसे केवल गुरुदेवकी कृपा प्राप्त सूक्ष्मदर्शी पण्डित ही समझ या देख सकते हैं। परन्तु स्थूल बुद्धि सम्पन्न कर्म-जड़ व्यक्ति जलके कम्पन आदि दोषयुक्त सूर्यके प्रतिबिम्बको यथार्थ सूर्य समझनेकी भाँति जन्मादि षड्विकारोंसे दोषयुक्त देहादिको ही आत्माका रूप समझते हैं, फलतः वस्तुके निर्मल स्वरूपका अनुभव करनेमें वे समर्थ नहीं होते।

(८) कबूतरसे शिक्षा

गुरुदासको कदापि किसीसे अधिक प्रीति नहीं करनी चाहिए। अथवा पालन-पोषण आदि बन्धनोंमें आसक्त नहीं होना चाहिए। अन्यथा उसे आसक्त और दीन कबूतरकी भाँति अत्यन्त क्लेश उठाना पड़ता है। किसी जङ्गलमें एक कबूतर अपनी प्यारी भार्य्या कबूतरीके साथ बड़े आनन्दसे रहता था। वे एक दूसरेके प्रति इतने आसक्त हो गये थे कि वे एक साथ ही सोते, बैठते, घूमते-फिरते, ठहरते, बातचीत करते, खेलते और खाते-पीते थे। वे क्षण भर भी एक-दूसरेको देखे बिना नहीं रह सकते थे। कबूतरी पर कबूतरकी इतनी आसक्ति हो गयी थी कि वह जो कुछ चाहती, कबूतर बड़े-से-बड़ा कष्ट उठा कर भी उसकी कामना पूर्ण करता। वह कबूतरी भी अपने कामुक पतिकी कामनाएँ पूर्ण करती। समय आने पर कबूतरीको बच्चे हुए। अब दोनों बड़े प्यार-से बच्चोंका पालन-पोषण करने लगे। वे अपने नन्हें-नन्हें बच्चोंके पालन-पोषणमें इतने आसक्त रहते कि उन्हें दीन-दुनिया, लोक-परलोककी याद ही न आती। वे भगवानकी मायासे मोहित हो रहे थे। एक दिन वे दोनों बच्चोंके लिये चारा लाने जङ्गलमें गये। इधर एक बहेलिया संयोगवश उनके घोंसलेकी ओर आ निकला। उसने घोंसलेके आस-पास फुदकते हुए कबूतरके बच्चोंको जाल फैलाकर पकड़ लिया। उसी समय कबूतर और कबूतरी—दोनों जङ्गलसे बच्चोंके लिये चारा लेकर लौटे और उन्होंने बच्चोंको जालमें दुःखसे चें-चें करते देखा। कबूतरीके तो दुःखकी सीमा न रही। वह रोती-चिल्लाती उनके पास दौड़ गयी और अपने शरीरकी सुध-बुध खोकर स्वयं भी जालमें फँस गयी। अब कबूतर अपने प्राणोंसे भी प्यारे बच्चों और प्राण-प्रिया पत्नीकी दयनीय दशा देख कर अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगा। अन्तमें वह भी रोते-रोते स्वयं जान-बूझ कर जालमें कूद पड़ा। बहेलिया बड़ा ही क्रूर था। उसे गृहस्था-श्रमी कबूतर, कबूतरी और बच्चोंके मिल जानेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उन सबको लेकर अपने घर लौट गया। इसी प्रकार जो लोग परमार्थ साधनके एकमात्र खुले द्वारके समान परम दुर्लभ मानव-जन्मको पाकर भी कबूतर और कबूतरीकी भाँति घर-गृहस्थी और कुटुम्बके भरण-पोषणमें ही आसक्त रहते हैं उन्हें शास्त्रमें आरुढ़च्युत (बहुत ऊँचे तक चढ़ कर गिरा हुआ) की पदवी दी गयी है।

(९) अजगरसे शिक्षा

प्राणियोंको जैसे बिना इच्छाके, बिना किसी प्रयत्नके, रोकनेकी चेष्टा करने पर भी पूर्व कर्मानुसार दुःख प्राप्त होते हैं, वैसे ही स्वर्ग या नरकमें सर्वत्र ही उन्हें प्रारब्धानुसार सुख भी प्राप्त होते हैं। इसलिये उसके लिये व्यर्थके उद्यमोंमें आयुका नाश न करके हर समय कृष्णकी कृपा पानेकी ओर दृष्टि रखनी चाहिये। बिना माँगे, बिना इच्छा किये स्वयं ही अनायास जो कुछ मिल जाय—वह चाहे रूखा-सूखा हो, चाहे बहुत मधुर और स्वादिष्ट, अधिक हो या थोड़ा—बुद्धिमान मनुष्य उसे भगवान्‌को अर्पण करके अजगरके समान उसे ही खाकर जीवन-निर्वाह करे और उदासीन रहे। स्वर्ग-सुख और नरक-क्लेश—दोनोंको समान और क्षणभंगुर जानकर उस प्रकारके सुख और दुःखकी अभिलाषा न करे। यदि भोजन न मिले अथवा मिल कर भी नष्ट हो जाय तो उसे दैवगति अर्थात् कृष्णकी इच्छा समझकर धैर्य धारण करे और अजगरके समान केवल प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए भोजनमें ही सन्तुष्ट रहे।

(१०) समुद्रसे शिक्षा

समुद्रकी भाँति गुरुदासको भी सर्वदा प्रसन्न और गम्भीर रहना चाहिए, उनका भाव अथाह, अपार और असीम होना चाहिए । तथा क्षोभका कारण उपस्थित होनेपर भी क्षुब्ध नहीं होना चाहिए । जैसेऊपरसे ज्वार-भाटे और तरङ्गोंसे युक्त रहने पर भी समुद्र सर्वथा शान्त-प्रशान्त बना रहता है, उसी प्रकार गुरुदासको भी आधि-व्याधि, जरा और सुख-दुःख-में भी शान्त रहना चाहिए। (२) जैसे समुद्र वर्षा ऋतुमें नदियोंकी बाढ़के कारण बढ़ता नहीं, न ग्रीष्म ऋतुमें घटता ही है, उसी प्रकार गुरुदासको सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिसे प्रफुल्लित नहीं होना चाहिये और न उनके घटनेसे दुःखी ही होना चाहिये ।'

'राजन ! इसके पश्चात् रूप, गंध, स्पर्श, शब्द और रस—इन पाँच विषयोंसे मोहित हुए पतङ्ग, मधुकर, हाथी, हिरण और मछली—इन पाँच गुरुओं से जो मैंने सीखा है, उसे भी श्रवण करें । बाहरी विषयोंमें आसक्ति ही जीवोंके पतनका कारण है।

(११) पतङ्गसे शिक्षा

जैसे पतङ्ग रूप पर मोहित होकर आगमें कूद पड़ता है और जल मरता है, उसी प्रकार अजितेन्द्रिय व्यक्ति जब स्त्रीको देखता है, तो उसके हाव-भाव पर लट्टू हो जाता है और घोर अन्धकारमें, नरकमें गिर-कर अपना सत्यानाश कर डालता है । वास्तवमें स्त्री भगवानकी वह मूर्त्तिमान माया है जिससे जीव भगवत्प्राप्तिसे वंचित रह जाता है। जो मूढ़ कामिनी-कांचन और वस्त्र-आभूषण आदि नाशवान मायिक पदार्थोंमें फँसे हुए हैं, जो सर्वदा उनका उपभोग करनेके लिये लालायित रहते हैं, वे अपनी विवेक-बुद्धि खोकर पतिङ्गोंके समान नष्ट हो जाते हैं। अतएव रूपकी आसक्तिको सर्वनाशका मूल कारण जानकर गुरुदासको उससे सदा सतर्क रहना चाहिए ।

(क्रमशः)

श्रीगौड़ीय व्रतोपवास (माघ)

२६ नारायण, २ माघ, १६ जनवरी, मङ्गलवार—पुत्रदा एकादशीका उपवास ।
२७ ,, ३ ,, १७ ,, बुधवार—पूर्वाह्न ६-५६ के पहले एकादशीका पारण ।
३ माधव, ६ ,, २३ ,, मङ्गलवार—श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीका आविर्भाव ।
६ ,, १२ ,, २६ ,, शुक्रवार—श्रीनरहरि सेवा विग्रह प्रभुका तिरोभाव ।
१२ ,, १८ ,, १ फरवरी, वृहस्पतिवार—षट्तिला एकादशीका उपवास ।
१३ ,, १६ ,, २ ,, शुक्रवार—पूर्वाह्न १० बजे के पहले एकादशीका पारण ।
२० ,, २६ ,, ६ फरवरी, ,, —श्रीकृष्णकी वसंत-पंचमी, श्रीविष्णुप्रिया देवीका आविर्भाव, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी और श्रीरघुनन्दन ठाकुरका आविर्भाव, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका तिरोभाव, श्रीसरस्वती पूजा ।
२२ ,, २८ ,, ११ फरवरी, रविवार—महाविष्णु-अवतार श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके आविर्भाव के उपलक्षमें उपवास ।
२३ ,, २६ ,, १२ ,, सोमवार—पूर्वाह्न ६-५६ के पहले पारण ।

❀ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ❀

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(नदीया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि** की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव तिथि-पूजा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें **श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति** के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी २ चैत्र, १६ मार्च, शुक्रवारसे ८ चैत्र, २२ मार्च, बृहस्पतिवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट महोत्सव** का अनुष्ठान होगा । इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे ।

इस उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपों का दर्शन तथा तत्तत्स्थान-महात्म्य-कीर्त्तन करते हुए **सोलह-क्रोश की परिक्रमा** होगी । गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी **श्रीनृसिंहपल्ली, चाँपाहाटी, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें शिविरादि में** वास कर निशि-यापनपूर्वक परिक्रमा करने की सुव्यवस्था की गई है ।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे । इस महदनुष्ठान का गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे । इति १६ दिसम्बर, १९६१

शुद्धभक्त-कृपालेश-प्रार्थी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने अथवा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा चिनसुरा (हुगली) के ठिकाने पर लिखें या भेजें ।